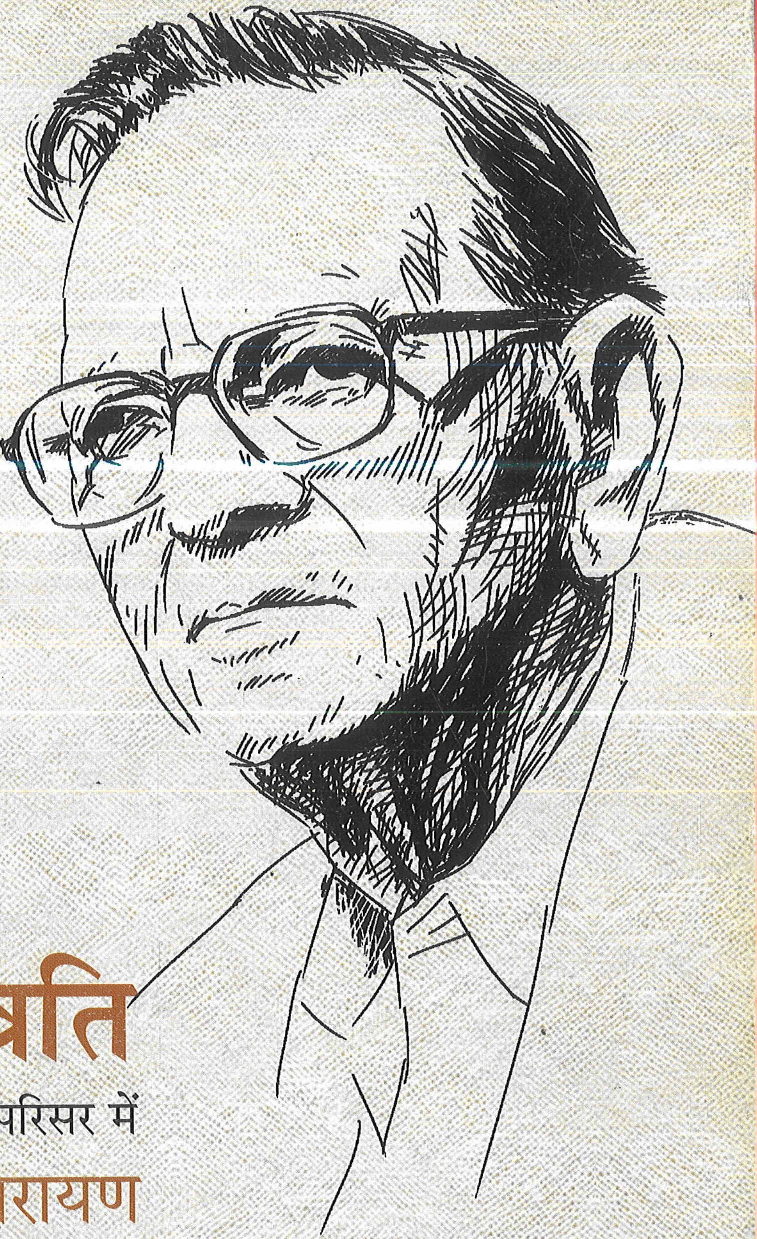

अन्विति

साहित्य के परिसर में

कुँवर नारायण

खंड : दो

कृतियों पर एकाग्र लेखन

सम्पादक

ओम निश्चल

ज्ञान द्वारा सम्भव मुक्ति का काव्य

रेखा सेठी

हिन्दी कविता के क्षितिज में कुँवर नारायण की उपस्थिति मानवीय उत्कर्ष के ध्रुव तारे सरीखी है। वे लम्बे समय से 'कविता' और 'चिन्तन' की उस अविरल धारा की नुमाइंदगी कर रहे हैं जिसका लक्ष्य मनुष्यत्व के परिष्कार की साधना है। उनकी चिन्ता व्यक्ति के उत्कर्ष को लेकर है, वहाँ कुछ भी अन्तिम, निश्चित या रूढ़ नहीं; उसकी गतिशीलता, एब्सल्यूट की तानाशाही को चुनौती देती हुई जीवन को स्वीकार्य भाव से ग्रहण करती है। कुँवर नारायण की प्रबन्ध रचनाएँ इस सत्य की साक्षी हैं। इस दृष्टि से 'आत्मजयी' का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जो आगे चलकर उनकी स्थायी कीर्ति का आधार बनी। उसका अगला पड़ाव 'वाजश्रवा के बहाने' में सामने आया और फिर कुछ वर्षों के अन्तराल पर 'कुमारजीव' में। इन तीनों कृतियों का जहाँ एक दूसरे से सापेक्षिक सम्बन्ध है वहीं उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी है। 'आत्मजयी' का नचिकेता और वाजश्रवा औपनिषदिक पात्र हैं जबकि 'कुमारजीव' का चरित्र ऐतिहासिक है। 'कुमारजीव' की कथा ऐतिहासिक पृष्ठों से उद्धृत होने के कारण तिथियों और घटनाओं से बंधी है किन्तु उसकी अंतर्धारा में वही दार्शनिक सवाल हैं जिनके उत्तर पाने की आकांक्षा में ये तीनों काव्य रचे गए। कुँवर नारायण ज्ञान के मुक्त आदान-प्रदान एवं संस्कृति के बहुलतावाद को जिस तरह प्रश्रय देते रहे हैं, कुमारजीव उन सबका प्रतीक पुरुष है। इन सभी रचनाओं में कथा माध्यम भर है, कवि का उद्‌देश्य जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर विचार करते हुए उन सच्चाइयों को प्रमुखता देना है 'जो किसी भी समय में माने रख सकती हैं।' ये सभी कृतियाँ ज्ञान द्वारा सम्भव मुक्ति के अनुभव का काव्य हैं जहाँ वर्तमान अपने अतीत और स्मृतियों से पोषित है।

कुमारजीव का समय ईसा की चौथी शताब्दी है। गहरी सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल के समय में, अलग-अलग देश-प्रांतर में भटकते हुए, असुरक्षा और कारावास के संत्रास को झेलते हुए कुमारजीव ने लगभग तीन-सौ बौद्ध-ग्रन्थों का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया-सिर्फ़ अनुवाद ही नहीं किया, उसके द्वारा तथागत को अपने भीतर अर्जित कर पूरे एशिया में प्रसारित किया। कवि के निकट कुमारजीव

R Sethi

का महत्त्व इसीलिए है कि उसने जो किया वह न केवल कविता और भाषा के क्षेत्र में एक कमाल था बल्कि विद्वता के क्षेत्र में भी एक कमाल ही है। कुमारजीव का ऐतिहासिक दाय सभ्यता और संस्कृति के विकास का अनूठा सोपान है। कई भाषाओं के बीच एक साथ जीते और संवाद करते हुए कुमारजीव संसार को एक नयी संवेदनशीलता से पहचानता है। उसका नयापन भौतिक जगत का नहीं, दृष्टि और अनुभव का है।

इस काव्य की पंक्ति-दर-पंक्ति कुमारजीव के माध्यम से कुँवर नारायण के दृष्टिबोध को साकार करती है। अपनी लम्बी काव्य-यात्रा में जीवन और समय की अनेक विडम्बनाओं के साक्षी होकर भी उन्होंने मूल्यों के प्रति अपनी आस्था तथा सही-ग़लत के नैतिक बोध को कभी मद्धिम नहीं पड़ने दिया। कवि अपने आप से जूझ कर जिस जीवन-सत्य तक पहुँचने का आकांक्षी है उसमें समय, परम्परा एवं मूल्य-बोध उसके सहयात्री हैं–

समय पढ़ता है केवल शब्दों को नहीं
आँसू की उस बूँद को भी
जो कभी-कभी टपक जाया करती है
अक्षरों के बीच...

इसी चिन्तन-मनन से गुज़रता कुमारजीव समय को उसकी निरंतरता में पहचानता है। कवि, समय की अखंडता को महसूस करते हुए, स्याह अँधेरों की अपेक्षा चमकते उजालों को देखता है, अशिव को पचाकर शिव की सुगन्ध का सक्रिय अहसास संजोता है। कोई भी साधक-विचारक-कलाकार अपने समय का संधान करते हुए उस समय के सामानांतर एक प्रति-समय रचता है जो समय के विविध काल-खंडों में उसे जीवित रखता है, 'प्रत्येक क्षण, कई समयों को जीते हुए...।' उसका भौतिक समय नष्ट-धर्मा है जो उसके जीवन के साथ समाप्त हो जाता है लेकिन उसकी रचनाओं, उसके विचारों का समय शाश्वत है जो हर युग में नए-नए अर्थ संदर्भों में पुनर्जीवित होता है। बुद्ध हों या कुमारजीव–वे अपने विभिन्न समयों में और विभिन्न युगों में जीवन के उच्चादर्शों के सूत्रधार ही हैं।

फिर से जिया जा सकता है कुमारजीव को
जैसे उसने जिया था तथागत को
क्योंकि कोई भी बुद्ध या कुमारजीव
कभी भी मरता नहीं

इस काव्य में समय की निरन्तरता का ग्राफ सिर्फ़ बुद्ध और कुमारजीव को ही नहीं जोड़ता, उसका एक सिरा हमारे समय से भी बंधा है। श्लाघ्य महापुरुषों के जीवन चरित्र, उनके समय और समाज को पहचानने का जितना बड़ा आईना हैं उससे कहीं

अधिक वे हमारे समय का प्रतिबिम्ब हैं। जीवन के प्रति समर्पण भाव से भरकर वह बुद्ध को अपने समय में अर्जित करने, साकार करने का प्रयत्न कर रहा है। समय में आकंठ निमग्न होकर वह समय को पार कर जाता है। देह या देश-काल तो भौतिक अस्तित्व की सीमाएँ हैं। विराट में इनका विलयन निजता की परिभाषा को मानवीयता की अवधारणा में बदल देना है। यहाँ कुछ भी मिटता नहीं-न निजता, न अस्मिता; बल्कि यह और विस्तृत हो जाती है-व्यक्ति को मुक्त करती हुई। कुमारजीव इसी मुक्ति पथ का अनुगामी है।

कूछा, कश्मीर, काश्गर, ल्यांगचओ, छांग-आन से गुज़रती कुमारजीव की जीवन-यात्रा अनेक विडम्बनाओं की साक्षी है। वह उस बुद्धिजीवी का प्रतिनिधि है, राज्य-सत्ताएँ जिसके ज्ञान पर अधिकार चाहती हैं। उसकी विद्वता एवं प्रतिष्ठा ही उसके लिए संकट बन जाती है। अनेक राजनीतिक हलचलों के बीच ल्वी-कुआंग द्वारा कुमारजीव को ल्यांगचओ राज्य में बंदी जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है। यह विषम परिस्थिति उसके लिए परीक्षा भी है और चुनौती भी किन्तु राजसी अहंकार व आक्रामकता के पट-चित्र पर वह जो कथा लिखता है उसमें शुभ एवं शिव की आकांक्षा कभी मद्धिम नहीं होने पाती। अपने कक्ष की दीवारों को वह पुस्तकों-ग्रंथों से पाट देता है। उसका सारा समय चिन्तन, मनन, अध्ययन में बीतने लगता है। कुँवर नारायण लिखते हैं-"ज़रूर वह मुश्किल वक़्त रहा होगा पर निश्चय ही यह वक़्त बेकार नहीं गया। शायद यहीं हम आदमी की संकल्प-शक्ति और पुरुषार्थ की उस महत्ता को पहचान सकते हैं जो उसके प्रारब्ध को बदल सकती है।"

कुमारजीव की यात्रा बाहर से भीतर मुड़ जाती है। उसने अपने 'स्व' को देश-काल की सीमाओं से मुक्त कर एक उन्मुक्त असीम में लय कर लिया। उसका असीम विचार, कल्पना, भाषा, साहित्य, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान का वह अद्वितीय लोक बन गया जिसने उसके अंतरतम के अँधेरे को उजास से आलोकित कर दिया। उसने-

पत्थर की दीवारों से
लड़ने के बजाय
उन दीवारों को
पारदर्शी और दूरदर्शी बना लिया था

इस दृष्टि से, 'कुमारजीव' मुख्यतः ज्ञान द्वारा संभव मुक्ति के अनुभव का काव्य है। चिन्तन-मनन और अध्ययन से ज्ञान अर्जित करता हुआ कुमारजीव देश-काल की सीमाओं से स्वयं को पूर्णतः मुक्त कर लेता है।

कुँवर नारायण की बहुत बड़ी चिन्ता मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ी है। उन्होंने व्यक्ति, समय और परम्परा को केवल उनकी भौतिक हदबंदियों में बँध कर नहीं देखा है। उनके लिए मनुष्य का अस्तित्व उसकी आत्मिक चेतना से जुड़ा है। यह आत्मीय चेतना ही उसे अपने परिवेश और पूरे ब्रह्मांड से एकसूत्र करती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व, उनके

यहाँ, समूची सृष्टि के प्रति उसके 'रिस्पांस' से बनता और मिटता है। कवि के लिए उस सृष्टि के प्रति समर्पित होना, एकलय होना मनुष्य को भीतर से समृद्ध करता हुआ उदात्तता की ओर ले जाता है। कुँवर नारायण की समस्त रचनाओं का उद्देश्य इस वृहत्तर मानवीयता को प्राप्त करना है। एक ऐसी जीवन-दृष्टि का विकास करना जो बर्बर महत्त्वाकाक्षांओं की अपेक्षा मनुष्य की विवेक चेतना पर टिकी हो। यह एक बड़ा दार्शनिक प्रश्न है, जिसमें दर्शनशास्त्र की व्यापक चिन्ताएँ मनुष्य को जीवन जीने का नया विवेक देती हैं। समस्त दर्शनशास्त्र, युग-युगों से एक ही शाश्वत प्रश्न का उत्तर खोज रहा है। यह यात्रा शून्य से शून्य तक है और उस वृत्त में ही मनुष्य को अपना अस्तित्व चीन्ह कर, अपने होने को सार्थक करना है। कुमारजीव का व्यक्तित्व इसी साधना की सिद्धावस्था है। कुमारजीव अपने अस्तित्व-बोध को केवल इन्द्रियों के बोध तक सीमित नहीं करता। उसकी लड़ाई भी इन्द्रियों से नहीं, अज्ञान से है। अपने गुरु सूर्यसोम तथा विमलकीर्ति के साथ संवाद करते हुए तथा अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए वह बराबर यह आग्रह करता है कि विसंगतियों के बीच जीवन का सन्तुलन बिन्दु मध्यम मार्ग ही है। उसके जीवन का लक्ष्य मात्र अपनी मुक्ति नहीं, औरों की मुक्ति में सक्रिय रूप से भागीदार होना भी है क्योंकि तथागत की दृष्टि में भी कोई मुक्ति तब तक पूर्ण नहीं होगी जब तक सबकी मुक्ति उसमें शामिल न हो।

'ज्ञान और मुक्ति' का संश्लिष्ट अनुभव इस काव्य की धुरी है, फिर भी सांकेतिक रूप में, कवि ने यह प्रश्न उठाया है कि आम आदमी का इस ज्ञान से क्या सम्बन्ध हो सकता है? अपने सुख-दुःख में लिप्त साधारण मनुष्य के लिए कुमारजीव जैसे विद्वान द्वारा संचित ज्ञान की क्या उपादेयता है? क्योंकि सुखी केवल सुख में लिप्त है और दुःखी व्यक्ति केवल अपने अभावों और कष्टों का निवारण या समाधान चाहता है। कवि की इस चिन्ता से यह भान होता है कि ज्ञान की सार्थकता दुनिया को बदल देने में है। अंतर्द्वंद्व के कुछ ऐसे ही क्षणों में कुमारजीव के विचार तथागत की ओर मुड़ जाते हैं और उसे उत्तर मिलता है-

जीने का ध्येय बदलते ही
बदल जाता है जीवन।
प्यार और करुणा से सोचें
तो जीने का अर्थ बदल जाता है।

इस खंडकाव्य का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है-सत्ता और बुद्धिजीवी का सम्बन्ध। लगातार यह अहसास होता है कि 'कुमारजीव' भौतिक जीवन की ऊहापोह, द्वन्द्व, टकराहट और संघर्ष की सीमाओं के पार उदात्त के संधान का काव्य है। लेखक की अन्तर्दृष्टि को कुमारजीव के जीवन के छोटे-बड़े प्रसंगों में अनुभव किया जा सकता है। बार-बार ऐसे सभी प्रसंग कवि कुँवर नारायण की जीवन-दृष्टि को ही मुखरित करते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि राजा का दम्भ ज्ञान पर अधिकार चाहता है और

परम ज्ञान में स्वयं को अर्जित करता कुमारजीव इस भौतिक संसार की एक वस्तु में तब्दील हो जाता है! वह 'लड़ाई में जीता हुआ सबसे अनमोल रत्न' है जिसे ल्वी कुआँग अपने सम्राट को भेंट करने के लिए ले जा रहा है। उसे राजनीतिक कारावास दे दिया जाता है। सिर्फ़ आज्ञाएँ देती हुईं राज-सत्ताएँ, आतंक उत्पन्न कर, जीवन में मानवीय एवं करुण की हत्या कर देती हैं। कवि ने राजसत्ता का चित्रण जिन शब्दों में किया है उसमें अपने समय की प्रतिध्वनि भी सुनी जा सकती है–

सम्राट के आतंक से घबराकर
लोगों ने बहुत धीमे बोलना सीख लिया है

कभी-कभी तो इतना धीमे बोलते हैं
मानो वह भाषा में नहीं
केवल आहों और हिचकियों में बोल रहे हों

कुँवर नारायण की दृष्टि भौतिक वस्तुवाद की अपेक्षा आत्मिक उन्नयन को चुनती है। इसलिए कुमारजीव की लड़ाई आतंकित करने वाली सत्ता-शक्तियों से नहीं है। वह तो मानता है कि जीवन को मानवीय बनाने वाला ज्ञान राजनीति के चरित्र को भी बदल सकता है। सम्राट याओ-शिंग का शासन हिंसा और आतंक की राजनीति से परे मानवीय मूल्यों से अनुशासित राज्य और समाज का नया प्रारूप प्रस्तुत करता है।

आक्रामकता से भिड़ंत की कई दृष्टियाँ हो सकती हैं। कवि अपने स्वभाव अनुसार विनम्रता एवं करुणा का पक्षधर है। संघर्ष और समन्वय के द्वन्द्व में कुँवर नारायण की दृष्टि सदा समन्वय को चुनती है। कुमारजीव उनके इसी घोर आशावाद का प्रसार है। अव्यवस्था और टकराहट के समय में जीवन को सम-भाव से जीना आसान नहीं रहा होगा किन्तु कुमारजीव उस मुश्किल समय में जीवन को सकारात्मक दिशा की ओर मोड़ देता है। संवेदनशीलता व ज्ञान के प्रति अटूट निष्ठा के साथ, वह एक बहुत बड़े उद्देश्य को पूर्ण करता है। इस बिन्दु पर कुमारजीव और कुँवर नारायण एक ही दृष्टि-बोध को पुष्ट करते हैं।

कुँवर नारायण की रचनाओं में अपने युग-यथार्थ को जीने और समझने का नजरिया जनवादी आग्रहों से भिन्न है। कवि के लिए बाह्य परिवेश के प्रति उत्तरदायी होना जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी है अपने मन के गलियारों में झाँकना और अपनी नैतिक जवाबदेही के प्रति सजग होना। कवि-दृष्टि उस व्यक्ति पर है जो सत-चित-आनन्द का कोष है। आध्यात्मिक सन्दर्भों में नहीं, मनुष्य के उत्कर्ष के स्तर पर। कवि के लिए मानवीय अस्तित्व केवल बाह्य या भौतिक जगत तक सीमित नहीं है, अंतर्मन का भी अस्मिता-बोध होता है। उसका भी अपना यथार्थ है, यह समझ कुँवर नारायण हमारे भीतर जगाते हैं। 'आत्मजयी' का नचिकेता तथा 'कुमारजीव' का कुमारजीव इसी आत्म का संधान कर आत्मजयी बनते हैं। कुमारजीव कहता है–

हमारी आँखें लपकती हैं
दूर चमकते तारों के लिए
पर देख नहीं पातीं
कि तारों और अँधेरों का
पूरा चिदाकाश तो हमारे अन्दर ही है

यह जीवन–दृष्टि पलायन की अपेक्षा अत्यन्त सकारात्मक ढंग से समय के प्रवाह में अपने पद–चिह्न छोड़ने की कोशिश है, जीवन के क्रूरतम यथार्थ को झेलते हुए व्यक्ति के आत्मचेतस होने का प्रमाण। पूरी कृति में निराशा और निर्वासन के अँधेरे साये मँडराते रहते हैं किन्तु उनको चीरता हठीला आशावाद स्पृहणीय है। हिंसा का प्रत्युत्तर, जीवन में सकारात्मकता की साधना के निश्चय और संकल्प पर आश्रित है। अलग–अलग भाषाओं–संस्कृतियों में एक साथ विचरण करते हुए कुमारजीव के जीवन में अलगाव की रेखाएँ पिघलने लगती हैं। बचता है, महाशून्य–सा अखंड अनुभव–उजास से भरा हुआ और जीवन को प्रति–पल समृद्ध करता, भरा–पूरा बनाता।

मुक्ति का यह अनुभव उसके व्यक्तित्व की वह धुरी है जो उसके प्रत्येक कर्म में झलकती है। कमल के पत्ते पर पानी की बूँद के सदृश, सबके बीच होकर भी सबसे निर्लिप्त। न तो सत्रह साल का बंधक जीवन उसे क्षुब्ध कर सकता है और न ही बाद में छांग–आन में मिला राजकीय सम्मान। छांग–आन में राजा याओ–शिंग की आज्ञा होती है कि राज्य को एक नहीं अनेक कुमारजीव चाहिए, वह भी सशरीर। कुमारजीव के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं राजकुमारी एवं अनेक युवतियाँ। एक बार फिर कुमारजीव के लिए परीक्षा की घड़ी है। समय के संकट को सत्ता की ताक़त के सम्मुख हर कवि–कलाकार ने अपने जीवनकाल में अवश्य महसूस किया है। अंतर उसकी प्रतिक्रिया में है जो उसके दृष्टि बोध से निर्धारित होती है। राजा को यह बोध नहीं है कि कुमारजीव जैसे लोग देह से नहीं, बल्कि आत्मज्ञान से उत्पन्न होते हैं। कुमारजीव जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में श्रेष्ठतम जीवन–बोध विकसित करने की चेष्टा करता है। मुक्त मानस का सम्बन्ध अपने आसपास के प्रत्येक प्राणी को मुक्ति देने वाला है। जो स्त्रियाँ उसके लिए प्रस्तुत हैं वह उन्हें भोग्या रूप में ग्रहण न कर, समग्र जीवन बोध से, रोम–रोम में बसे सान्निध्य भाव से ग्रहण करता है। उदात्त की साधना में रत कुमारजीव अनुभव करता है–

प्रेम अपने दैहिक और
आत्मिक दोनों रूपों में
एक उदात्त अनुभव है

इससे पूर्व भी कथा में ऐसे प्रसंग आते हैं जहाँ किसी स्त्री को कुमारजीव के सम्मुख भोग की वस्तु बना कर इस तरह प्रस्तुत किया गया, जिससे कि वह अपने लक्ष्य से विमुख हो जाए। ऐसे अवसरों पर प्रायः स्त्री की लाचारी व निरीहता भी

अत्यन्त मार्मिक एवं विचलित करने वाली है। कुमारजीव, अपने सम्मुख आई अनजान स्त्री के डर की साँकल तोड़, उसे आश्वस्ति का जीवन-आधार देता है–

एक स्पर्श उसे आश्वस्त करता
कि उस समय भी उसे कोई सँभाल लेगा
जब उसे लगेगा कि वह बिल्कुल अकेली छूट गयी है।

कुमारजीव स्त्री-पुरुष के बीच भेद नहीं करता, उसके मन में बराबरी का उत्साह है। वह अपने जीवन में आने वाली स्त्रियों को ज्ञान की बारीकियों के द्वारा मुक्ति-पथ पर अग्रसर कर रहा है। यह उसकी दृष्टि का ही अन्तर है जो अधिकार नहीं समंजन चाहती है, एक ऐसा समंजन जिसमें सृष्टि का उत्स है।

कुमारजीव की स्त्री-दृष्टि कवि की स्त्री-दृष्टि की भी परिचायक है। कुँवर नारायण व्यक्ति की आत्मिक चेतना को जिस तरह परिभाषित करते हैं, उसमें स्त्री-पुरुष का कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। जेंडर उनकी सामाजिक चेतना पर उतना हावी नहीं है अर्थात् जेंडरगत विषमता व्यक्ति के मनोबल को नहीं तोड़ पाती। यह भी मानवीय एवं करुणापूर्ण सामाजिक पृष्ठभूमि की प्रस्तावना है। यों 'कुमारजीव' की रचनाशीलता में, कुँवर नारायण की जीवन-दृष्टि का प्रतिफलन झलकता है।

अनेक दृष्टियों से यह कृति, उनके काव्य और साहित्य का विवेकपूर्ण निष्कर्ष है। इस पूरी रचना में वे सभी बिन्दु परिलक्षित हुए हैं जो उनकी अन्य रचनाओं में अलग-अलग रूप में उभरते रहे हैं। मन में यह सवाल जरूर उठता है कि इस रचना के लिए उन्होंने खंडकाव्य की विधा को क्यों चुना? इस रचना से पूर्व आए दो खंडकाव्यों से यह कृति भिन्न है। अन्तर केवल कथा के आधार का ही नहीं है, इन सभी कृतियों में घनत्व का भी अन्तर है। 'कुमारजीव' कवि की एक यात्रा है जो वह तथागत और कुमारजीव को साथ लेकर कर रहा है। कथा के सूत्र बराबर अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी होते रहते हैं जैसे कि आत्मालाप चल रहा हो। 'कुमारजीव' की कहानी व्यापक लोक-कल्पना का हिस्सा नहीं है लेकिन बड़े दार्शनिक प्रश्नों से रू-ब-रू होते हुए वह कवि को रुककर उन प्रश्नों पर विचार करने का अवसर देती है जो जीवन को नये मायने दे सकता है।

रचना के आरम्भिक हिस्से में कवि ने एक नाटकीय संरचना दी है। जीवा और कुमारायण कुमारजीव के जीवन और भविष्य को लेकर परस्पर संवाद कर रहे हैं। इन दृश्यों की बिम्बधर्मिता रंगमंचीय दृष्टि के भी अनुकूल है। किन्तु पूरी रचना काव्य-नाटक नहीं। कहीं-कहीं इतिहास के व्यापक संदर्भ हैं। जैसे काशी नरेश द्वारा विद्वान अश्वघोष को कनिष्क को सौंप दिये जाने की घटना का संकेत चिह्नित करता है कि व्यापक मानवीय हित एवं शान्ति के लिए ज्ञान को एक अन्य संस्कृति में भी प्रतिफलित किया जा सकता है। उससे उसका विस्तार ही होगा। कोई भी विद्वान अथवा साधक किसी राजा के अहं और अभिमान का प्रतीक पुरुष नहीं हो सकता। कुँवर नारायण

इन सभी संकेत सूत्रों को कथा के बीच-बीच में बुन देते हैं। इससे कथा या घटनाएँ प्राथमिक न होकर जीवन संदेश प्रमुख हो जाता है। यह कलेवर किसी सीमा तक आकार में कुछ लम्बी हो गई कविता जैसा लगता है, जिसकी प्रथम पंक्ति से अन्तिम पंक्ति तक एक ही जीवन-बोध बार-बार दोहराया जा रहा है। सम्भवतः कवि कथा के सूत्रों तथा महत उद्देश्य के कारण इसे खंडकाव्य कहना अधिक श्रेयस्कर मानते हैं।

कुँवर नारायण की भाषा-सहृदयता भी इस काव्य में लक्षित होती है। वे भाषाओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील हैं। कुमारजीव भी भाषाओं का साधक है। उसके जीवन का उद्देश्य उपदेशक या साधक होना नहीं है। वह अपनी सारी ऊर्जा दो भाषाओं व संस्कृतियों के बीच सेतु बनकर साकार करना चाहता है। अपने जीवन उद्देश्य के बारे में कुमारजीव का कहना है–

मेरा मुख्य उद्देश्य बौद्ध दर्शन-ग्रन्थों को
संस्कृत और पाली से चीनी भाषा में लाना है
उनकी संपूर्ण संवेदना और संस्कृति के साथ

कुमारजीव ने संस्कृत और चीनी भाषा में जो परिवर्तन किए वे स्थायी रहे क्योंकि उसने उन भाषाओं के संसार को पूरी गहराई के साथ अपनाकर विस्तृत वितान दिया। कुँवर नारायण पहले से ही अनुवाद के महत्त्व को स्वीकार करते रहे हैं। अपने वैचारिक गद्य 'शब्द और देशकाल' के एक निबन्ध में उन्होंने लिखा है, "एक संस्कृति के बीज दूसरी संस्कृति में पहुँचकर विकसित हुए। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण कुमारजीव का जीवन और उसका कार्यक्षेत्र है, जिसमें संस्कृत और चीनी भाषा को एक नयी जीवन-शक्ति मिली।" कुमारजीव के लिए चीनी और संस्कृत दोनों ही सीखी हुई भाषाएँ थीं लेकिन इनमें काम करते हुए वह इन भाषाओं में भी परिवर्तन करता है, यही अनुवाद की रचनाशीलता व सामर्थ्य है कि दो भाषाएँ एक दूसरे को समृद्ध करें और दो संस्कृतियों के बीच संवाद होने लगे। ऐसी रचनाशीलता भी मुक्ति का सबब है जिसे कुमारजीव ने धैर्य एवं निष्ठा के साथ अर्जित किया।

बहुत दिनों बाद कुँवर नारायण ने अपनी चुप्पी तोड़ी है किन्तु जिस सत्य का संधान करने वे निकले हैं उस दिशा में यह एक सार्थक और गम्भीर प्रयास है। ज्ञान की परम्परा में कुमारजीव समग्रता एवं समन्वय का जो प्रतिमान रचता है, वह किसी भी युग के लिए आदर्श हो सकता है। अतिरेक और आक्रामकता के बीच समन्वय का संगीत सुन पाना, प्रज्ञा पारमिता की वह उपलब्धि है जिसे जानकर हमेशा के लिए अँधेरों से बाहर निकला जा सकता है। इस काव्य में केवल कुमारजीव ही उस रश्मि-रेखा का संधान नहीं करता, बल्कि कवि भी स्वयं ज्ञान द्वारा अर्जित मुक्ति का सारथी बन जाता है। यही इस काव्य की उपलब्धि है जो सम्भवतः हिन्दी कविता का नया प्रतिमान बन सकती है।